श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत

शरणागति

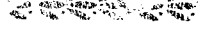

श्री श्री गुरु गौरांगौ जयतः

ॐ विष्णुपाद सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर
विरचित

शरणागति

ॐ विष्णु पाद परमहंस अष्टोत्तर शत श्री श्री श्रील
भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद
सम्पादित

तदीय भृत्य श्री नित्यानन्द ब्रह्मचारी जी से
पुरी प्रपन्नाश्रमसे
प्रकाशित

भिक्षा ४ आना

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्य विवर्ज्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा ।
आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः ॥

(वैष्णवतन्त्र वाक्य)

श्री श्री गुरु गौरांगौ जयतः

मुखबन्ध

श्रीकृष्ण चैतन्य देवने संसार भरके प्राणियोंके कल्याणार्थ पंचम पुरुषार्थ श्रीकृष्णजीके प्रेमका दान किया है तथा वही पुरुषार्थ प्राप्त करनेका एक ही उपाय 'शरणागति' जगज्जीवोंको बताया है। उनके पार्षदवर्ग अपने आचरणोंसे इसी आदर्श शिक्षाका प्रचार करते आ रहे हैं।

समयके प्रभावसे श्री चैतन्यदेवके मनोभीष्ट प्रचारकवृन्दके नित्य धाममें प्रवेश करनेके कारण गौड़ीय गगन भोग और त्यागके निविड़ अन्धकारसे आच्छादित हो गया। उस समय श्री गौरसुन्दरजीके इच्छानुसार तदीय कृपाशक्तिने नवद्वीप मण्डलमें सच्चिदानन्द भक्तिविनोद नामसे आत्मप्रकाश किया। वे सनातन धर्म या आत्मधर्मानुशीलनसे विभिन्न मतभेदोंको लक्ष्य करके श्री चैतन्यदेवजीके प्रचारित सार्वजनीन प्रेम धर्मका प्रचार करने लगे। उन्होने प्राणियोंकी आत्मवृत्तिका उन्वेषण करनेके लिये बहु सदुपदेशपूर्ण सुसिद्धांत ग्रन्थोंका प्रणयन किया है।

ठाकुरजीके इन सब ग्रन्थोंको तदीय प्रिय सेवक ॐ विष्णुपाद परमहंस श्री श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी जीने जनताके कल्याणार्थ विविध भाषाओंमें ग्रन्थ और पत्र पत्रिकाओंमें प्रचारित किया है। उनके विपुल प्रचारसे बहु सरल हृदय भक्तोंका प्रभूत कल्याण साधित हुआ है।

श्री सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने श्री चैतन्यदेवकी साधन-पद्धतिको 'शरणागति' नामक इस क्षुद्र ग्रन्थमें शरणागतिके

छः लक्षणों जैसे—कार्पण्य याने दैन्यशिक्षा, आत्मनिवेदन याने भगवत् पाद पद्मोंमें आत्मोत्सर्ग करनेकी शिक्षा, गोप्तृत्ववरण याने भगवानजीको एक ही पालनकर्त्ताके रूपमें ग्रहण करनेकी शिक्षा, विश्वास याने श्रीकृष्ण निश्चय रक्षा करेंगे ऐसे दृढ़ विश्वासकी शिक्षा तथा अनुकूल याने श्रीकृष्णजीकी प्राप्तिके लिये जो सहायता पहुँचाता है वही ग्रहणीय है की शिक्षा, के साथ सहज और सरल पद्योंमें वर्णन करके उपदेश दिये हैं और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजीने उपदेशपूर्ण इस क्षुद्र ग्रन्थको बङ्गला, ओड़िआ, तेलगू, तमिल, हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओंमें प्रचारित किया है।

मदीय श्री गुरुदेवजीके उपदेशोंको शिरोधार्य करके आत्म कल्याणके साधनार्थ उनके वाणीसमूहका क्षुद्र क्षुद्र ग्रन्थोंके रूपमें प्रकाश करनेकी आशा की है। श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामीजीके सम्पादित 'भागवत' नामक हिन्दी पाक्षिक पत्रमें प्रचारित शरणागतिके पद्य समूहका संग्रह करके श्री गुरुजीके पदारविन्दोंके प्रतिसाधनके लिये संप्रति इस क्षुद्र ग्रन्थका प्रकाश किया।

पाठकवृन्द इस ग्रंथको पढ़कर श्री चैतन्यदेवजीकी प्रचारित शिक्षा धारामें अनुप्राणित होकर ग्रन्थ प्रकाश रूपी प्रचार कार्यमें हार्दिक सहायता पहुँचायें। इसी आशामें ही मैंने इसे उनके सम्मुख उपस्थापित किया।

श्री जगन्नाथजीका स्नान पूर्णिमा वासर

श्री प्रपन्नाश्रम, बालिसाही, पुरी
गौराब्द ४६५, ज्येष्ठ पूर्णिमा

श्री गुरु वैष्णव चरण सेवाकांक्षी
श्री नित्यानन्द ब्रह्मचारी

श्री भक्तिविनोद प्रभु वराष्टकम्

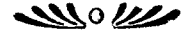

श्री गौरप्रेष्ठं महतां महिष्ठं
रागाध्वनिष्ठं गुणवद्गरिष्ठम् ।
दयार्णवं तत्वविचारजीवं
वन्दे प्रभुं भक्तिविनोददेवम् ॥१॥

आचार्य्यवर्य्यं परहंसधुर्य्यं
भूतुल्यधैर्य्यं परशान्तिकार्य्यम् ।
भवाब्धिनावं हतदुःखदावं
वन्दे प्रभुं भक्तिविनोददेवम् ॥२॥

वेदान्तदक्षं परिधूतमोक्षं
सत्सङ्गरक्तं कुकथाविरक्तम् ।
दीनैकबन्धुं हरिप्रेमसिन्धुं
वन्दे प्रभुं भक्तिविनोददेवम् ॥३॥

श्रीकृष्ण चैतन्य कृपैकवित्तं
तन्नामसञ्चार सुव्यग्रचित्तम् ।
स्वाचारवन्तं सुप्रचारचिन्तं
वन्दे प्रभुं भक्तिविनोददेवम् ॥४॥

श्री नाम संकीर्त्तन भक्तिलग्नं
श्रीराधिका कृष्ण रसाब्धिमग्नम् ।
स्रवज्जलाक्षं श्रितभावलक्षं
वन्दे प्रभुं भक्तिविनोददेवम् ॥५॥

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीन्दु—
र्यस्येह मूर्त्तिः सुप्रसादसिन्धुः ।
तनोति सर्वत्र हरिप्रभावं
नमामि तं भक्तिविनोददेवम् ॥६॥

महाप्रभोः प्रेरणया प्रलुप्तं
तद्धाम-प्राकट्यमिह प्रणीतम् ।
रूपानुगं भागवतानुरागं
नमामितं भक्तिविनोददेवम् ॥७॥

श्रीगौरधाम व्रजधामचैकं
ज्ञात्वा विरेजे निरवद्यतर्क्यम् ।
श्रीगोद्रुमे कुञ्जगृहे सुभव्यं
नमामितं भक्तिविनोददेवम् ॥८॥

हे कृष्णपादाब्ज प्रमत्तभृङ्ग !
हे शास्त्रसंविद् ! बुधसङ्गरङ्ग !
जगद्गुरो ! भक्तिविनोददेव !
प्रसीद मन्दे मयि वै सदैव ॥९॥

(त्रिदण्डी स्वामी श्री भक्तिदेशिक आचार्य्य)

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द नामिने ।
गौरशक्ति-स्वरूपाय रूपानुग वराय ते ॥

श्रीगौद्रुमचन्द्राय नमः

शरणागति

—१—

भजु मन श्रीचैतन्य महाप्रभु।
करिकै दया जगत-जीवन पै, निज पार्षद, निज धाम साथ लै।
लीन्हो है अवतार विष्णु विभु। भजु०।
दीन्हो प्रेम-दान दुर्लभ अति, सिखयाइ भगतन शरणागति।
भक्त-प्राणधन, जीवन, सरवस। भजु०।
आत्म-निवेदन, दैन्य-प्रकाशा, रखिबो उर ऐसौ विश्वासा।
रक्षा करि हैं कृष्ण अवसि, बस। भजु०।
गोप्ता जानि वरन मन लाई, काज भक्ति अनुकूल सोहाई।
काज भक्ति-प्रतिकूल त्याग कर। भजु०।
षट प्रकार शरणागत जो जन, मन लावै सब विधि हरि-चरणन।
सुनै प्रार्थना नन्द-सूनुवर। भजु०।
दाँत दाबि तृण रूप-सनातन पाँयन पर्यो पकरि जुग-चरणन।
भक्तिविनोद करै सुनिवेदन। भजु०।
रोइ-रोइ कह अधम मन्दमति, हौं मैं, मोहिं सिखाइ शरणागति।
प्रभु, बनाइए उत्तम जीवन। भजु०।

—२—

दैन्यात्मक

आकर इस संसार में भूला तुमको नाथ।
नानाविध पाइ व्यथा शोक-दुःख के साथ। १।

आया हुं तव श्रीचरण-सेवा में भगवान ।
अपने दुःखों की कथा कहता हुँ धर ध्यान । २ ।
मातृगर्भ में जब रहा बन्धकर बन्धन पाश ।
तब दर्शन तुमने दिया किया मोह का नाश । ३ ।

फिर वञ्चित उससे किया दीन दास को हाय ।
मैंने सोचा, जन्म ले भजन करूँगा जाय । ४ ।
जन्म हुआ, तब मैं पड़ा माया के भ्रमजाल ।
ज्ञान तुम्हारा लेश भी रहा नहीं उस काल । ५ ।

स्वजनों ने सादर किया लालन-पालन नाथ ।
मैंने समय बिता दिया हँसी-खुशी के साथ । ६ ।
मातापिता के स्नेह में भूल गया तव भक्ति ।
भला लगा संसार यह बढ़ी सतत अनुरक्ति । ७ ।

क्रम से बढ़कर बाल मैं बालकगण के सङ्ग ।
लगा खेलने खेल बहु मन में बढ़ी उमङ्ग । ८ ।
बीते कुछ दिन और, तब ज्ञान हुआ उत्पन्न ।
पढ़ने-लिखने में लगा, हुआ बहुत व्युत्पन्न । ९ ।

विद्या का गौरव लिये घुमा देश-विदेश ।
किया उपार्जन द्रव्य का हो एकाग्र विशेष । १० ।
स्वजनों का पालन किया, भूला तुमको नाथ ।
अब पछताता हुँ प्रभो ! बड़े दुःख के साथ । ११ ।

वृद्ध हुआ व्याकुल महा रोता भक्तिविनोद ।
क्या करना था, क्या किया, महामूढतामोद । १२ ।
भजन किया प्रभु का नहीं, आयु गई सब व्यर्थ ।
अब क्या गति होगी अहो ! हुँ सब विधि असमर्थ । १३ ।

विद्या के विलास में मैंने समय बिताया कर साहस।
भजे न तव श्रीचरण कभी, अब शरण एक तुम ही हो, बस॥
पढ़ते-पढ़ते हुआ भरोसा ज्ञान सहायक होगा अन्त।
आशा विफल हुई, दुर्बल है ज्ञान, ज्ञान अज्ञान अनन्त॥
सब जड़ विद्या माया-वैभव भजन तुम्हारे में बाधा।
मोह अनित्य जगत में जन्मा, जीव गधा सोइ आराधा॥
गधा बना संसार-भार सो मैंने लादा बहुत समय।
अब हुँ वृद्ध, अशक्त, न कुछ भी अच्छा लगता है निश्चय॥
जीवन हुआ यातना, विद्या हुइ अविद्या, उलटा खेल।
जलन अविद्या बहुत दे रही, विद्या बनी हृदय की सेल॥
नाथ, तुम्हारे चरण छोड़ धन जग में मेरे और नहीं।
भक्तिविनोद छोड़ जड़ विद्या, तव श्रीचरण गहे नितहीं॥

धनोपार्जन किया मैंने, जवानी में बना कामी।
स्मरण कर धर्म गृहिणी का गहा तब हाथ हे स्वामी॥
गृहस्थी साथ में उसके जमाने का इरादा कर।
समय यों ही बहुत-सा तो बिताया व्यर्थ ही प्रभुवर॥
बहुत-से पुत्र-पुत्री फिर हुए, जिन से गया घर भर।
अनेकों कष्ट, चिन्ताएँ, नहीं थीं छोड़ती दम भर॥
बुढ़ापा आ गया, दिन दिन बढ़ा बोझा गृहस्थी का।
हुइ अस्थिर, अचल मति गति, हुआ जीवन जगत फीका॥
सताती नित्य थी चिन्ता, करे पीड़ा विकल विह्वल।
अभावग्रस्त होकर फिर रहा दुःखाग्नि में मैं जल॥

अन्धेरा हर तरफ है, कुछ न सूझ लग रहा है भय।
उबरने के लिए उससे करूँ क्या देव करुणामय॥
नहीं है थाह जिसकी, वह नदी संसार की भारी।
मरण सिर पर खड़ा है, कुच की मेरी है तैयारी॥
"यहाँ का काम पूरा कर, बजे जब कुच की भेरी।
भजूँगा तब तुम्हें स्वामी", विफल आशा है यह मेरी॥
सुनी प्रभु, सत्य कहता हूँ, तुम्हारे बिन नहीं गति है।
बिना प्रभु की कृपा पाए, वृथा संसार की रति है॥
निराशा सब तरफ से है, मुझे चरणों में आश्रय दो।
करूँ सेवा सदा प्रभु की, हृदय की वासना क्षय हो॥

—५—

सदा पापरत मेरा जीवन, नहीं पुण्य का लेश।
औरों को उद्विग्न किया बहु, दिया जीव को क्लेश॥
निज सुख को नहीं किया पापभय, निर्दय, स्वार्थ समाया।
पर-सुख में दुःख, मिथ्याभाषी, पर-दुःख में सुख पाया॥
बहु कामना हृदय में मेरे, क्रोधी, दम्भ-परायण।
विषय-विमोहित, मदोन्मत्त नित, हिंसा-गर्व-विभूषण॥
सुकृत-विरत, निद्रालस में रत, मैं कुकार्य-उद्योगी।
शठता करूँ प्रतिष्ठा-कारण, लोभी, कामी, भोगी॥
ऐसा दुर्जन, सज्जन-वर्जित, अपराधी अतिशय नित।
भजूँ अनर्थ, सुकार्य-शून्य हो, नाना दुःख-निपीड़ित॥
वृद्ध हुआ निरुपाय, आकिञ्चन, दीन, सदा अस्थिर मन।
भक्तिविनोद नाथ-चरणों में करता दुःख-निवेदन॥

आत्मनिवेदनात्मिका

मेरे दुःख की गाथा सुनिए, हे प्रभु जगदाधार।
सुधा समझ विष पिया विषय का, ऐसा मूढ़ गँवार॥
जीवन रवि अब अस्त हो रहा, कौन करूँ उपचार? ॥ मेरे० ॥
बचपन बीता खेलकूद में, पढ़ने में कैशोर।
नेक विवेक न आया मन में, माया घेरे घोर॥ मेरे० ॥
भोग हेतु यौवन में मैंने व्याह किया भगवान।
पुत्र, मित्र हो गए अनेकों, पाया कष्ट महान॥ मेरे० ॥
आई जरा, सभी सुख भागे, पीड़ित, कातर भारी।
क्षीण कलेवर हुआ, इन्द्रियाँ भी दुर्बल हैं सारी॥ मेरे० ॥
नहीं भोग की शक्ति रही है, इससे दुःखित अन्तर।
ज्ञान लेश से हीन, दीन मैं, भक्तिरहित, अति पामर॥ मेरे० ॥
मेरा क्या उपाय अब होगा? दीनानाथ! मुरारे।
पतित-बन्धु! मुझ पतिताधम से सारे पापी हारे॥ मेरे० ॥
मेरा करो विचार प्रभो! तो पाओ गुण नहीं एक।
केवल कारण दोषों का मेरे करो विचार न नेक॥ मेरे० ॥
निज-पद-पङ्कज अमृत पिलाओ, मिटे प्रमाद-प्रमोद।
पार करो जीवन की नौका, कहता भक्तिविनोद॥ मेरे० ॥

—७—

हे श्रीपति! तव श्रीचरणों में यह है मेरी विनय प्रभो।
तव पद-पल्लव छोड़ दिये, मन मेरा मद हो गया विभो॥
विषम विषय-विष-सेवन ही में मुग्ध रहा मन सदा अहो।
अब भी नहीं छोड़ना चाहे, चाहे जितना विकल रहो॥

दीनानाथ कहाते तुम हो, मैं हूँ दीन हताश प्रभो।
अब तो केवल तव चरणों की मुझे रह गई आश प्रभो॥
मुझ-सा दीन न और मिलेगा, मुझपर स्वामी! कृपा करो।
तव-जन-सङ्ग भजूँ मैं तुमको, मेरा सकल प्रमाद हरो॥
गाऊँ नाम धाम में प्रभु के, यों ही समय बिताऊँ मैं।
भक्तिविनोद कहे, प्रभु! तव पद-शीतल छाया पाऊँ मैं॥

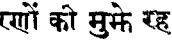

दुर्मति ने ऐसा घेरा, संसार-बीच हूँ पड़ा हुआ।
पर हे प्रभो! आपका मुझपर अहो अनुग्रह बड़ा हुआ॥
किसी महाजन अपने जन को तुमने भेज दिया स्वामी।
उसे दया आई लख मुझको महापतित, कुत्सित, कामी॥
उसने कहा– "पास आ मेरे अरे दीन, सुन बात भलो।
तेरा हृदय उल्लसित होगा, विकसित होगी हृदय-कली॥
नवद्वीप में प्रकट हुए हैं श्री श्रीकृष्ण देव चैतन्य।
तुम सम दीन तारते हैं वह, लोग देखकर होते धन्य॥
दीन हीन जन तुमसे कितने किए उन्होंने हैं भव पार।
वेद-प्रतिज्ञा की रक्षा को रुक्मवर्ण द्विज-सुत सुकुमार॥
भाई हैं अवधूत सङ्ग में, नाम महाप्रभु का लेकर।
जो सब नदिया के लोगों को करते हैं उन्मत्त उधर॥
नन्द-सुत ही चैतन्य गोसाईं अपना नाम दान करके।
सभी जगत् को तार रहे हैं अहङ्कार-बाधा हरके॥
तुम भी जाओ परित्राण के पाने को"– मैं यह सुनकर।
चरण-शरण में आया हूँ, मैं नाथ! कृपा करिए मुझपर॥
भक्तिविनोद कहानो अपनी रो रो कर प्रभु! कहता है।
सेवा-भक्ति आपकी केवल करना चित्त में चाहता है॥

—६—

हे करुणानिधि ! मैंने अच्छा कर्म एक भी नहीं किया।
ज्ञान न मुझको हुआ, तुम्हारे चरणों में मन नहीं दिया॥
अपने ही को ठगा किया मैं, जड़ सुख में मतवाला बन।
चारों ओर अन्धेरा छाया, सोचा किया विषण्ण वदन॥
आत्मसमर्पण किया तुम्हारे श्रीचरणों में अब स्वामी।
मुझ पर करिए कृपा, जानकर भक्तिमार्ग का अनुगामी॥
प्रभो ! प्रतिज्ञा यही तुम्हारी, जो कोई शरणागत है।
उसे प्रमाद कभी न सतावे, यही शास्त्र का भी मत है॥
मुझ पापी को और न गति है, तव प्रसाद मैं माँग रहा।
और मनोरथ सारे तजकर एक मनोरथ यही गहा॥
कब मैं हूँगा नाथ ! आपका, नित्य सेव्य तुम हो स्वामी।
भक्तिविनोद नित्य है सेवक, भाव मग्न तव अनुगामी॥

—७—

प्राणेश्वर ! का कहौं मर्म की बात।
ऐसा पाप नाहिं या जग में जो न कियो दिन-रात॥
सोइ कर्मफल भव में भोगौं देहुँ दोष क्यहि नाथ।
तव परिणाम विचार न करिकै कीन्ह्यों अपनो घात॥
अब पाछे पछिताय हाय मैं चहौं होइबो पार।
दोष विचारि दण्ड तुम देहौ भोगौं मैं संसार॥
करत गतागति भक्तजनन सङ्ग, मति तव चरण मँझार।
सौंपी तव पद माहिं चतुरता अपनी प्रभो उदार॥
गरब गयो सब जर्यो हृदय को, दीन-दयालु अपार।
पाय कृपा तव निर्मल आशा भक्तिविनोद सँभार॥

—११—

देह, गेह, सर्वस्व सब जो कछु है प्रभु, मोर।
पाद-पद्म में तव कियो अर्पण नन्दकिशोर॥
वरण किए तव श्रीचरण, जीवन-मरण सँभार।
सम्पद, विपदा में गयो मम दायित्व अपार॥
मारो अथवा राखिबो जो इच्छा तुव नाथ।
नित्य दास हौं मैं सदा अधिकृत तेरे हाथ॥
जन्म देन की होय जो इच्छा देव, तुम्हार।
भक्त-भवन में जन्म तो दीजो करुणागार॥
जहाँ तुम्हारे दास तहँ कीट-जन्म-स्वीकार।
नहीं बहिर्मुख ब्रह्म को जन्म चहौं बेकार॥
भुक्ति-मुक्ति की कामना-रहित तुम्हारे भक्त।
तिन को सङ्ग लहौं रहौं तिन ही में अनुरक्त॥
तुमहीं जननी त्यों जनक, दयित, तनय सब मोर।
प्रभु, पति, गुरु तुम सर्वमय साँचे नन्दकिशोर॥
भक्तिविनोद कहै प्रभो! देहु विनय पै कान।
राधानागर, आप हैं गुणआगर मम प्राण॥

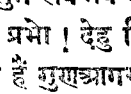

"मैं" "मेरा है"- शब्द-अर्थ से जो कुछ भी प्रभु, होता
अहो दयामय, तव चरणों में अर्पण करता हूँ मैं सो॥
अब तो स्वामी, रहा नहीं हूँ मैं अपना— सच-कहता हूँ।
सभी तरह से हुआ तुम्हारा, चरण-शरण में रहता हूँ॥
जीव देहधारी ने "मैं" के अहंभाव को छोड़ दिया।
आज हृदय में बस, त्वदीय-अभिमान एक है बसा लिया॥

देह, गेह, सर्वस्व हमारा, अनुचर, भाई बन्धु हजार।
पत्नी, पुत्र, रत्न, धन, सारा, पोतो, पोते, यह घरबार॥
सभी तुम्हारा हुआ आजसे, मैं चरणों का दास हुआ।
नाथ! तुम्हारे गृह में अब से मेरा नित्य निवास हुआ॥
तुम हो घर के स्वामी सच्चे, मैं सेवक भजनेवाला।
सदा करूँगा यत्न तुम्हारे सुख का, सब तजनेवाला॥
स्थूल-लिङ्ग-तनु में अब मेरा कुछ भी नहीं सुकृत दुष्कृत।
प्रभु, मैंने छुटकारा पाया, अब न रहा मैं जीवन्मृत॥
मेरी इच्छा मिली तुम्हारी इच्छा में—यह जन्म नया।
भक्तिविनोद आज अपने को है करुणानिधि! भूल गया॥

—१३—

मेरा कहने को प्रभो नहीं रहा कुछ और।
मातु-पिता प्रिय भ्राता सब तुम्हीं मित्र की ठौर॥
दारा-कन्या-मित्र-सुत सभी तुम्हारे दास।
तुम्हरे ही सम्बन्ध सब में भी करूँ प्रयास॥
धन-जन तेरा ही प्रभो तेरा ही घर द्वार।
तुम्हरे ही नाते मैं करूँ सेवा सकल सम्भार॥
तुम्हरी सेवा से कुछ धन-अर्जन का काम।
तुम्हरे नाते व्यय करूँ तुम्हरे ही संसार॥
भला-बुरा जानूँ नहीं, सेवा करूँ तुम्हार।
तुम संसारी विषय का, मैं हूँ पहरेदार॥
दरश श्रवण की वासना भूख-प्यास औ ज्ञान।
तुम्हरी इच्छा से सभी इन्द्रिय-चालन मान॥
अपने सुख के हेतु मैं करूँ नहीं कुछ कार।
तेरे भक्तिविनोद को तेरा ही सुख-सार॥

—१४—

वास्तव में सब तेरा है नहीं जीव किसी निश्चय में।
अहं और मम के भ्रम भ्रमता भोग-शोक औ भय में ॥
अहं तथा मम अभिमान यही मात्र है तो धन।
बद्ध जीव इन दो ही को समझे अपना मन ही मन ॥
रहा उसी अभिमान चढ़ा मैं संसारी हो अड़ के।
डुबकी पै डुबकी खाता हूँ भव-सागर में पड़ के ॥
नाथ, तुम्हारे अभय चरण में शरण आज मैं धरता।
होकर दीन प्रभो यह सेवक आत्मनिवेदन करता ॥
अहं तथा मम अभिमान छोड़ मुझे अब दोनों जावें।
अब मेरे मन में हे स्वामी जगह नहीं ये पावें ॥
प्रभो, यही विनती है अपनी ऐसा बल हम पावें।
जिससे अहं और ममता को मन से दूर भगावें ॥
दृढ़ हो करके आत्मनिवेदन भाव हृदय में आवे।
हाथी के स्नान-सरिस वह क्षणिक न होने पावे ॥
जिससे भक्तिविनोद प्रभो इस नित आनन्द को पावे।
माँग रहा परसाद यही अभिमान सदा को जावे ॥

करूँ निवेदन अहो प्रभो, मैं तुम्हरो चरण-शरण में।
पतित अधम मैं बहुत बड़ा हूँ जाने सब त्रिभुवन में ॥
मुझ सा पापी नहीं जगत में कहता सत्य विचार।
मुझ सा अपराधी नहीं कोई और मध्य-संसार ॥
सब पापों का अपराधी मैं बहुत बड़ा हूँ पापी।
जिसे छोड़ते लज्जा आती तुम सब जानो आपी।

तुम व्रजेन्द्रनन्दन सर्वेश्वर ईश्वर तुम्हें सुनाऊं ।
तुम्हें छोड़ हे नाथ, कहो मैं कौन शरण में जाऊं ॥
जगत तुम्हारा है यह स्वामी तुम्हीं सर्वमय आप ।
तुम्हरे प्रति अपराध हुआ है-तुम्हीं करो क्षय पाप ॥
तुम ही तो हो पतित जनों के आश्रय जग के माहीं ।
सिवा तुम्हारे नाथ जगत में कोइ दयामय नाहीं ॥
ऐसे अपराधी हे स्वामी हैं इस जगमें जितने ।
तुम्हरे शरणागत होयेंगे हैंगे पापी कितने ॥
कर जोड़े यह भक्तिविनोद शरण तुम्हारी लेता ।
तुम्हरे ही चरणों में स्वामी आत्मसमर्पण होता ॥

——::——

—१६—

आत्म-निवेदन कर चरणों में हुआ सुखी जीवन में ।
दुःख दूर हो, रही न चिन्ता, चौदिक आनन्द मन में ॥
अभय-अशोक-अमृत के आकर तुम्हरे ये चरणद्वय ।
उन चरणों का आश्रय लेकर छोड़ा मैंने भव-भय ॥
करूँ तुम्हारे भव का सेवन रहूँ न फल का भागी ।
रहो सुखी तुम, करूँ यतन मैं वही चरण-अनुरागी ॥
तुम्हरी सेवा से दुःख हो तो वह है मुझे परम सुख ।
सेवा-सुख-दुःख परम सम्पदा नशै अविद्या को दुःख ॥
पहले का इतिहास भूल सब सेवा-सुख पी मन से ।
मैं तेरा हूँ, तु मेरा है, काम कहो क्या धन से ?
भक्तिविनोद रहे आनन्द में तुम्हरी सेवा भर में ।
करे सभी तुम्हरी इच्छा से रहे तुम्हारे घर में ॥

———

—१७—

गोप्तृत्वे वरण

क्या जानें किस बल से तुम्हरि धाम हुआ शरणागत ।
अहो दयामय पतित-उधारन पतित-तरण में हो रत ॥
मुझे भरोसा यही नाथ है, तुम तो हो करुणामय ।
दयापात्र है नहीं मेरे सम, दूर करोगे मम भय ॥
इस अवनी में नहीं शक्ति कोई, जो मुझको तारे ।
तुम दयालु की यही घोषणा पामर अधम उधारे ॥
सभी समझकर आया हूँ मैं नाथ शरण में तेरे ।
नित्यदास मैं, पालयिता तुम जगन्नाथ हो मेरे ॥
सभी तुम्हारा, दास मात्र मैं, कर दो मेरा तारन ।
चरण-वरण मैं करूँ तुम्हारे रहे नहीं अपनापन ॥
भक्तिविनोद शरण में आया रोकर नाथ तुम्हारे ।
पालन करो, नाम-रुचि देके, क्षमि अपराध हमारे ॥

———

—१८—

निज कुटुम्ब यह देह तथा पालन सुत-दारा ।
मन में व्याकुल बना सदा रहता मन-मारा ॥
कैसे लाता अर्थ, कहाँ से यश को पाता ।
कन्या-पुत्र विवाह भला किस भाँति निभाता ॥
आत्म-निवेदन किया बचा चिन्ता का मारा ।
तुम्हीं निबाहो प्रभो, अहो संसार तुम्हारा ॥
तुम पालोगे नाथ, मुझे निज दास बहाने ।
तुम्हरी सेवा में यह मन अति ही सुख माने ॥
तुम्हरी इच्छा ही से प्रभु सब कारज होता ।

'मैं सब करता' जीव कहे; यह मिथ्या-थोता ॥
तुम न करो तो जीव भला कुछ क्या कर सकता ?
तुम्हरो चेती होय, जीव आशा भर करता ॥
होकर मैं निश्चिन्त तुम्हारी सेवा मानूँ ।
घर के भले-बुरे को प्रभु, मैं कुछ न जानूँ ॥
भक्तिविनोद प्रभो, अपने स्वातन्त्र्यहि खोके ।
सेवे सदा चरणको नित्य अकिञ्चन होके ॥

—::—

१९—

सभी तुम्हारे चरण सौंप के पड़ा तुम्हारे घर में ।
तुम स्वामी हो, पाला हुआ तुम्हारा एक कुक्कुर मैं ॥
बाँध रखो तुम पास आपने रहूँ तुम्हारे द्वारे ।
शत्रु आदि सब दूर भगाऊँ, रख सीमा के पारे ॥
भक्त तुम्हारे प्रसाद-सेवन कर जो जूठन त्यागे ।
बड़ी खुशी से अपना भोजन, नित्य सोइ हम माँगे ॥
सोवत-बैठत चिन्ता तुम्हरे चरणों हो की लावैं ।
नाचत-नाचत तबहीं आवैं जबहीं नाथ बुलावैं ॥
निज पोषण की करूँ न चिन्ता रहूँ भाव में भरे ।
भक्तिविनोद तुम्हीं को अपना पालक बरै ॥

—::—

—२०—

तुम सर्वेश्वर-ईश हौ हे व्रज-ईश-कुमार ।
तुम्हरो इच्छा होत है विश्व-सृजन-संहार ॥
तुम्हरी इच्छा से सदा ब्रह्मा सिरजन हार ।
तुम्हरी इच्छा विष्णु हैं करते पालन कार ॥

तुम्हरी इच्छा से सदा शिव करते संहार ।
तुम इच्छा सिरजन करे माया कारागार ॥
तुम्हरी इच्छा जीव भी जनम-मरण नित पाय ।
समृद्धि और निपात या दुःख-सुख आवे जाय ॥
मिथ्या आशापाश को माया जीव बँधाय ।
तुम्हरी इच्छा के बिना कुछ भी होन न पाय ॥
तुम ही रक्षक हौ मेरे औ पालक के ठौर ।
तुम्हरे चरणों के सिवा आशा मुझे न और ॥
निजबल-चेष्टा छोड़ के रहता तुम्हरी आस ।
तुम्हरी इच्छा से सदा निर्भर करूँ निवास ॥
दीन अकिञ्चन है प्रभो, सेवक भक्तिविनोद ।
यह जीवन औ मरण है नाथ, तुम्हारे मोद ॥

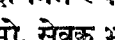

—२१—

विश्रम्भात्मिका

अब समझा मैं प्रभो, तुम्हारे चरण-दरसते ।
हैं अशोक अभयामृत-पूरन सब-क्षण रहते ॥
सभी छोड़कर पड़ा हुआ हूँ पद-कमलों में ।
शरण तुम्हारे हुआ नाथ, इन चरण-तलों में ॥
पद-कमलों में रखना मुझको नाथ हमेशे ।
और न रक्षक रहा जो भव-सागर से तारे ॥
नित्यदास हूँ मैं, समझा अब मतलब सारा ।
अब मेरे पालन का प्रभुजी, काम तुम्हारा ॥
पाया बहु दुःख मैं स्वतन्त्र जीवन भरने में ।
सब दुःख भागे दूर कमल-पद के बरने में ।

—२७—

विषय-विमूढ़ और मायावादी जन।
भक्ति शून्य दोनों जीव धारें अकारण॥
इन दो का सङ्ग नाथ न होवे हमार।
प्रार्थना करूँ मैं यही चरण तुम्हार॥
इन दोनों में विषयी कुछ खुशहाल।
मायावादियों का न हो सङ्ग किसी काल॥

विषयी-हृदय जब साधुसङ्ग निवासे।
अनायास पाये भक्ति, भक्त-कृपा से॥
मायावाद-दोष को हृदय पाले जोय।
कुतर्क से हृदय उसका वज्र-जैसा होय॥
भक्ति का स्वरूप और विषय आश्रय।
मायावादी अनित्य कहें समुदय॥

धिक् उनकी कृष्ण-सेवा श्रवण-कीर्तन।
कृष्ण-अङ्ग वज्र मारे उसका स्तवन॥
इसीसे मायावाद भक्ति-प्रतिकूल।
मायावादी-सङ्ग नहीं चाहूँ कभी भूल॥
भक्तिविनोद मायावाद दूर करो।
वैष्णव के सङ्ग बैठ नाम-आश्रय धरो॥

—२८—

मैं हूँ स्वानन्द-सुखदवासी।
राधिका-माधव-चरण-दासी॥
दोनों के मिलन आनन्द करूँ।
दोनों के वियोग दुःख से मरूँ॥

सखी-स्थली नहीं हेरूँ नयन ।
देख शैव्या को याद पड़े मन ॥
जो जो प्रतिकूल चन्द्रा की सखि ।
मन में दुःख हो उनको देखि ॥
राधिका-कुञ्ज में अन्धकार करि ।
मिलना चाहें उन राधा से हरि ॥
श्रीराधागोविन्द का मिलन सुख ।
प्रतिकूल लोगों का न देखु मुख ॥
राधा के प्रतिकूल हैं जो जन ।
उनसे बोलने को न होय मन ॥
भक्तिविनोद श्रीराधा-चरण ।
सौंपा है हृदय अतिहि यतन ॥

—२१।

आनुकूल्यात्मक

तव भक्ति-अनुकूल जो जो कर्म चय ।
बड़े ही यतन में मैं करूँगा निश्चय ॥
भक्ति-अनुकूल जितने विषय संसार ।
करूँगा उसमें रति इन्द्रिय के द्वारा ॥
सुनूँगा तुम्हारी कथा यतन करके ।
देखूँगा तुम्हारे धाम नयन भरके ॥
तव परसाद करूँ देह का पोषण ।
नैवेद्य-तुलसी घ्राण करूँगा ग्रहण ॥
इन हाथों करूँ तव सेवा मैं सदा ।
~~तव बसती में प्रभु रहूँ मैं सर्वदा~~ ॥

काम को तुम्हारी सेवा नियोग करू ।
तव विद्वेषी को देख क्रोध से जरूँ ॥
येही रूप सर्व वृत्ति और सर्व भाव।
तव अनुकूल होके लहहो प्रभाव ॥
तव भक्त-अनुकूल जो जो मैं करूँ ।
तव भक्ति-अनुकूल मानूँ, उसे धरूँ ॥
भक्तिविनोद नहीं जाने धर्माधर्म ।
भक्ति-अनुकूल तव होवें सब कर्म ॥

—३०—

गोद्रुमधाम भजब अनुकूल ।
माथुर नन्दीश्वर सम-तूल ॥
तेहि मँह सुरभी-कुञ्ज-कुटीर ।
बैठूँ मैं सुर-तटिनी तीर ॥
गौरभक्त प्रियवेश दधाना ।
तुलसीमाल तिलक शोभमाना ॥
चम्पक बकुल कदम्ब तमाल ।
रोपित निरमित कुञ्ज विशाल ॥
माधवि-मालति लगाऊँ तहाँ ।
छाया-मण्डप करूँ जहाँ ॥
रोपूँ वहाँ कुसुम वनराजि ।
जाही जुही मल्लिका साजि ॥
मञ्च रखूँ तुलसी महाराणी ।
कीर्तन साज रखूँ तहँ आनी ॥
वैष्णव जन सह गाऊँ नाम ।
जय गोद्रुम जय गौर-सुधाम ॥

भक्तिविनोद भक्ति अनुकूल ।
यज कुञ्ज मुञ्ज सुरनदी कूल ।

—३१—

शुद्ध-भक्त- चरण रेणु,
भजन के अनुकूल ।
भक्त-सेवा, परमसिद्धि,
प्रेम-लताकी है मूल ॥
माधव-तिथि, भक्ति-जननि,
आदर पालन करूँ ।
कृष्ण वसति, वसति करूँ,
प्रेम-सहित वरूँ ॥

गौर मेरे, जिन स्थानों
किये भ्रमण रङ्ग
वे सब स्थान, देखूँ मैं भी,
प्रणयी भक्त-सङ्ग
मृदङ्ग-वाद्य, सुनने को मन,
अवसर सदा याचे ।
गौर-विहित, कीर्तन सुनूँ,
आनन्द-हृदय नाचे ॥
युगल मूर्त्ति, [illegible]
परम-आनन्द हो[illegible]।
प्रसाद-सेवा, करते ही हो,
[illegible] प्रपञ्च जय ॥

जिस दिन घर, भजन होवे,
घर में गोलोक काय ।
चरण सेवु, देख के गङ्गा,
सुख ना सीमा पावा॥
तुलसी देखि, मैं शीतल-मन,
माधव-प्रिया जानि ।
गौर-प्रिय, शाक-सेवन,
जीवन सार्थक मानि ॥
भक्तिविनोद, कृष्ण-भजन,
अनुकूल पाये जिसे ।
नित्य-विकल, परम-सुखी
स्वीकार करे उसे ॥

—३२—

राधाकुण्ड-तट-कुञ्ज-कुटीर ।
गोवर्धन-पर्वत यमुना तीर ।
कुसुम-सरोवर मानस-गङ्गा ।
कलिन्द-नन्दिनी विपुल तरङ्ग ॥
वंशीवट गोकुल धीर-समीर ।
वृन्दावन तरु-लतिका का नीर ॥
खगमृग-कुल और मलय वतास ।
मयुर भ्रमर और मुरलि-विलास ॥
वेणु शृङ्ग पदचिह्न मेघमाला ।
वसन्त शशाङ्क शङ्ख करताला ॥

युगल विलास में अनुकूल जानि।
लोला-विलास उद्दीपक मानि॥
यह सब छोड़ कहीं नहीं जाऊँ।
इन सब छोड़े प्राण गँवाऊँ॥
भक्तिविनोद कहे सुन कान।
तू उद्दीपक मेरा प्राण॥

—: समाप्त :—

ब्रह्मपुर : ओड़िशा प्रिण्टिङ्ग वार्कस् से श्री हाडु रायगुरुके द्वारा मुद्रित। १९५१।